Chap-6

षष्ठ अध्याय

आर्थिक तनावजन्य विघटन स्थितियाँ और हिन्दी-गुजराती कहानियाँ

षष्ठ अध्याय

आर्थिक तनावजन्य विघटन स्थितियाँ और हिन्दी-गुजराती कहानियाँ

प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन किसी सीमा तक आर्थिक मूल्यों से प्रभावित रहा है। अर्थ पर ही समाज का विकास आधारित है, यह एक सर्वमान्य सत्य है। अर्थ केन्द्रित समाज में जन-जीवन के उतार-चढाव का कारण अर्थ ही होता है। किसी भी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्णय आज उसकी आर्थिक स्थिति से निश्चित किया जाता है।

भारतीय समाज की अर्थ विषयक धारणा में काफी मात्रा में परिवर्तन आया है। अर्थ प्राप्ति के लिए हर प्रकार का संघर्ष जायज़ हो गया है।

परिवार में हर सदस्य का भी एक-दूसरे से बनना-बिगड़ना आज आर्थिकता से जुड़ गया है। जिस परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है, प्रायः उस परिवार के व्यक्तियों के बीच के सम्बन्ध शांतिपूर्ण एवं मधुर होते हैं। अन्दर ही अन्दर भले ही ईर्ष्या द्वेष हो किन्तु वह अच्छे रहन-सहन और आपसी शिष्टाचार के नकाब के पीछे कई बार छिपा रहता है।

आर्थिक स्थिति की वजह से व्यक्ति की मानसिक स्थिति पर भी प्रभाव

पड़ता है। और "अत्यधिक दरिद्रता भी पारिवारिक तनाव को उत्पन्न करती है। दरिद्रता के कारण परिवार चलाने में पग-पग पर कठिनाई आती है।"[1] आर्थिकता की वजह से व्यक्ति क्रोधित और चिड़चिड़ा हो जाता है। पत्नी द्वारा आर्थिक अभाव के कारण परिवार चलाने में पति की झुंझलाहट स्वाभाविक है। पति इस अभाव से लडने का प्रयत्न करने के बाद भी इसकी पूर्ति नही कर पाता तब परिवार में तनाव उभरने लगता है और कई बार परिवार विघटित होने की नौबत आ जाती है। महादेवी वर्मा ने लिखा है - अर्थ सामाजिक प्राणी के जीवन में कितना महत्व रखता है यह कहने की आवश्यकता नहीं।... विवश आर्थिक पराधीनता अज्ञात रूप में व्यक्ति के मानसिक तथा अन्य विकास पर ऐसा प्रभाव डालती रहती हैं जो सूक्ष्म होने पर भी व्यापक तथा परिणामतः आत्म विश्वास के लिए विष के समान है।"[2]

कई बार परिवार में होने वाली समस्याओं का कारण आर्थिक तनाव से ही उत्पन्न होता है और यह तनाव ज्यादातर मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग पर पड़ता है। आज आर्थिक अभाव के कारण योग्यता होने पर भी व्यक्ति न तो अपनी इच्छानुसार नौकरी और न ही सुविधाएँ जुटा पाता है। यहाँ तक कि अच्छा मकान और पौष्टिक भोजन भी इस वर्ग को नसीब नहीं होता। ऐसी स्थिति में व्यक्ति में निराशा पनपने लगती है। जिसका प्रभाव पारिवारिक संबंधों पर भी पडता है। इस स्थिति को देखकर कमलेश्वर कहते हैं - कितना विचित्र और विकराल है यह द्रश्य जो कुछ ही वर्षो में इस देश में उपस्थित हो गया है, कि जहाँ जहर खाकर आदमी जीवित

रह सकता है पर एक कटोरी दाल पीकर मर सकता है, सडे हुए बिजबिजाते हुए जख्मों को केवल जी सकता है, पर दवा लगाते या खाते ही मृत हो सकता है - जहाँ अस्पतालों में जल्लाद बैठे हैं और अदालतों में हत्यारे, दुकानों में लुटेरे और दफ्तरों में दगाबाज, खेतों में जमाखोर और उद्योगों में खूनचोर.." वे आगे कहते हैं - "यह इसी देश में हो सकता है कि शाम को कानून पास हो तो सारा अनाज गायब हो जाये और दूसरे दिन जब कानून तोड़ लिया जाये तो मनमाने दामों पर बिक्री के लिए वह अनाज फिर निकल आये, यह इसी देश में मुमकिन है कि आदमी को नंगा कर देने के लिए कपडा मिलें कपड़ा बनायें, इधर आदमी उतना ही निर्वस्त्र होता जा रहा है, दवाईयों की फैक्टरियाँ लगातार बढ़ती जायें और आदमी दवाईयाँ खरीदने लायक न रह जाये - कि खाद्य-कारखाने लगते जायें और खलिहानों से अनाज गायब होता जाये, नहरें खुदती जायें पर खेत खून से सिंचते जायें, रेलगाडियाँ दौड़ती रहें और लोग पैदल दौडने के लिए मजबूर हो जायें, इमारतें बनती जायें और आदमी बेघर होता जाये, गोदाम भरते जायें और जनता भूखों मरती जाये- पुलिस बढ़ती जाये और आदमी लुटता जाये, बैंक खुलते जायें और आदमी गरीब होता जाये, सरकार बनती जाये और कानून टूटते जायें, आदमी पथरता जाये और खून के आँसू रोता जाये।"[3]

स्वातन्त्र्योत्तर काल की बहुमुखी प्रगति ने देश की समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया किन्तु इससे अधिकतर धनिक वर्ग ही लाभान्वित हुआ, गरीब और अमीर के बीच की खाई और अधिक गहरी हो गई, साठोत्तरी काल की कहानियों

में आर्थिक विषमता के विभिन्न पहलुओं का चित्रण हुआ है।

कमलेश्वर की कहानी 'इतने अच्छे दिन' में आर्थिक मजबूरी का यथार्थ चित्रण किया गया है। गाँव में तीन साल तक वर्षा नहीं होती, अकाल पडता है। लोग भूखों मरने लगते हैं। पास ही शहर में एक चीनी मिल है और उसके साथ लगा हड्डियों का गोदाम।

बाला और कमली भाई-बहन हैं। वे गाँव-गाँव घूमकर जानवरों की हड्डियाँ इकट्ठा करते हैं और उन्हें बेचकर पेट पालते हैं। जब आठ दिन के अन्तर से उनके दादा और दादी की मृत्यु हो जाती है तो बापू उनकी अन्त्येष्टि करना चाहते हैं। लेकिन बाला विरोध करता है और उनकी हड्डियाँ बेच डालने की सलाह देता है। तब बाप चीखते हुए कहते हैं- "अरे कमीने, तू हड्डियां भी बेच खायेगा? ऐसी औलाद से तो निपूता ही मरता।"[4]

बाला नहीं मानता और हड्डियाँ बेच डालता है। इतने पर भी भाई-बहन चैन से नहीं जी पाते। ड्राईवर बंतासिंह परिवार की विवशताओं का फायदा उठा कर कमली का यौन शौषण करता है। यह स्थिति की कल्पना ही नहीं है, जीवन के कटु यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति है।

दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी 'बेहया' में चन्दा का पिता उसका विवाह

कुछ रूपये लेकर एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति लालचन्द से कर देता है। लालचन्द्र का यह तीसरा विवाह है। उम्र में वह चन्दा से करीब-करीब बीस साल बड़ा है। अभावग्रस्त पिता अर्थ की प्राप्ति में नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, अच्छाई-बुराई किसी बात की परवाह नहीं करता। अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए चन्दा कहती है - "इत्ती बड़ी तो इस जनरवे की बेटी होती, अंगूर पैदा करता। इस मूए ने मेरी जवानी बरबाद की। मेरे कमीने बाप ने इस हरामी के हाथ बेचा, अपना बुढापा आबाद किया। अरे, एक मुए ने बेचा, दूसरे ने खरीदा... मारी तो गई मैं।"[5]

परिवार की आर्थिक कठिनाइयों को देखते हुए, वह यह सब करने को विवश होती है। कुछ औरतें उसे कम्बख्त, बेहया आदि कहकर अपमानित करती हैं। परन्तु तरह-तरह के अपमान को सहते हुए भी वह पति की बीमारी और बेटे की पढ़ाई के लिये शेठ घनश्याम की रखैल तक बन जाती है।

आर्थिक दबाव ने आज भाई को भाई न रहने दिया, पुत्र-पिता में दरार पैदा कर दी और बेटी माँ से दूर जा गिरी। आज रिश्तों की कोई बुनियाद नहीं रही है। सिर्फ अर्थ ही आवश्यक बन गया है।

निर्मल वर्मा की कहानी 'बीच बहस में' पिता-पुत्र के मध्य चल रही एक अंतहीन बहस है। यह बहस वास्तव में दो पीढ़ियों की है। पुत्र, पिता की लम्बी बीमारी और परिवार के दायित्ववहन के भार से थक कर विराम चाहता है, परन्तु

विराम कहीं नहीं है। पुत्र पिता से कुछ कहना चाहता है, परन्तु पिता ट़ोक देते हैं।

पिता की बीमारी पुत्रों के लिए एक मुसीबत बन जाती है। पिता-पुत्र के मध्य क्रमशः संवाद अपना 'अर्थ' खो रहे हैं। दूसरा पुत्र कटु यथार्थ के प्रति संकेत करता है कि ऐसा-वैसा कुछ हो तो मुझे बुला लेना। मैं एकदम आ ज़ाऊँगा। आगा-पीछा मत देखना - होगा कुछ नहीं। गर्म झुलसती रेत पर के पैरों की तरह दोनों पुत्रों का वार्तालाप चलता है। पुत्र पिता से कहता है - स्पीक, स्पीक, यु कांट गो लाइक दिस। स्पीक, स्पीक, स्पीक।" पिता दुःखी होकर कहता है 'आई एम अशेम्ड ऑफ यु ऑल।' इन शब्दों के साथ ही पिता कितना कुछ लेकर चले जाते हैं।

पिता-पुत्र के गहरे आत्मीय सम्बन्धों के बीच उभरते बिखराव को यह कहानी बड़ी सूक्ष्मता से उकेरती है। पुत्रों की बदली मानसिकता का कारण पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, भौतिकता और स्वार्थ है, जिसने नयी पीढी और पुरानी पीढ़ी में अंतराल उत्पन्न कर दिया है। कितनी विचित्र स्थिति है। पिता-पुत्र का सम्बन्ध मानो इस वाक्य के साथ मर रहा है, पिता नहीं मर रहा। पिता ने कितने कष्ट सहकर पुत्रों को पाला होगा। आज की युवा पीढ़ी पिता के प्रति कृतज्ञ नहीं है। वे सोचते हैं, उन्होंने जन्म दिया है, कोई अहसान नहीं किया और पालना उनका कर्तव्य था। परम्परागत मूल्यों के लिए उनके मन में कोई स्थान नहीं है। रोगी, वृद्ध पिता क्या करें। यही पिता-पुत्र सम्बन्धों की विसंगतियाँ और टूटन है।

अपने ही पराये हो गये हैं। पुत्रों के लिए पिता द्वारा छोड़ा गया धन ही महत्व रखता है।

आज का सुलगता हुआ प्रश्न है 'नौकरी'। आज स्थिति यह हो गई है कि कितना ही पढ़-लिख लो, मगर नौकरी रिश्वत, पहचान के बगैर मिलना मुश्किल हो गई है।

'गुजरात समाचार' दैनिक में हर बुधवार के दिन 'शतदल' नामक विशेष आवृत्ति निकलती है। उसमें विवेक महेता (अहमदाबाद), कृष्णकान्त उनडकट (वडोदरा), हिमांशु पटेल (सुरत) ने लिखा है - "शिक्षण मेळव्या पछीय नोकरी विना रखडता गुजरातना युवानोओ शाकभाजी वेचवाना अने चा नी लारी करवाना दिवसो आव्या छे।" उन्होंने उदाहरण दिया है - 'होटल मेनेजमेन्ट का कोर्स करनेवाली बरोडा की हेतल जोशी हररोज सवेरे पाँच बजे फलों के रस / जूस का ठेला लगाती है। वो कहती है - "सरकार नोकरीओनी अने बेकारी हटाववानी वातो करे छे, बेकारोनी यादी दिवसे ने दिवसे लंबाती जाय छे, राजकारणीओनी वातमां आववा जेवुं नथी।"[6]

'रक्तजीवी' कहानी जितेन्द्र भाटिया कृत है जिसका नायक गाँव से महानगर नौकरी करने जाता है। नौकरी न मिलने पर गम को पीने के लिये शराब पीता है। एक दिन अचानक पिता आ जाते हैं। वह पिता को अपनी बेकारी बताना नहीं

चाहता। उसकी जिन्दगी में वह बिना बताये क्यों आ गया। वह पिता के प्रति उदासीन है, भरपेट उन्हें खिला भी नहीं सकता। इतनी विषम जिन्दगी जीनेवाले युवक के लिए सम्बन्ध की अर्थवत्ता भला क्या हो सकती है?

महानगरीय परिवेश में 'अर्थ' के दबाव ने पिता के प्रति भावनात्मक सम्बन्धों से परे, पारम्परिक मूल्यों से विलग कर संतान को जीवन के प्रति अधिक सजग, यथार्थवादी और ठोस धरातल पर ला खड़ा किया है।

हिन्दू परिवार में पुत्र का पिता के प्रति आजीवन कर्तव्य-निर्वाह एक दायित्व रहा है। आज की संस्कृति में आर्थिक पक्ष बड़ा जटिल है। पुत्र की परिवार में प्रतिष्ठा उसकी आर्थिक क्षमता से ही होती है। जब परिवार में पुत्र इस भूमिका का निर्वाह नहीं कर पाता तो वह घर से चला जाता है। पिता महानगर में और पुत्र गाँव में अपने को सहज नहीं पाते हैं। अपना रक्त देकर पुत्र को जो दस रूपये मिलते हैं, उसी से वह अपनी भूख शान्त करता है। ऐसी स्थिति में पिता के लिए पुत्र भला सोच भी क्या सकता है।

आज का मानव स्वार्थी हो गया है। स्वार्थ के अलावा आज उसको कुछ सूझता ही नहीं। आज आर्थिक कारणों से परिवार टूटते हैं, उनमें विघटन होता है। 'उषा प्रियंवदा' की कहानी 'वापसी' में गजाधरबाबू अर्थोपार्जन का सिर्फ एक साधन मात्र रह गये थे। इसी तरह मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानी 'डबडबाई आँखों

का सपना' एक ऐसे परिवार की कहानी है जो टूट रहा है। देखने में बाहर भरा पूरा परिवार है, परन्तु अंदर से बिखरा है। पुत्र जावेद घर से बाहर जाकर नौकरी करता है, घर वालों के लिए, पिता के लिए प्रतिमास व्यय भेजता है, परन्तु जब वह घर आता है, तो पिता उससे कोई सरोकार नहीं रखता, प्रेम के दो शब्द नहीं बोलता कि वह परदेश में अकेला कैसे रहता है, उसे कोई कष्ट तो नहीं है। मानों पुत्र का फर्ज पिता के लिए सब कुछ है, परन्तु पिता का पुत्र के प्रति कोई कर्तव्य ही नहीं है। ऐसे पिता स्वार्थी, कठोर और हृदयहीन व्यक्ति होते हैं। पुत्र को पिता की स्वार्थपरता के प्रति घृणा होती है और सम्बन्धों में विघटन हो जाता है। घर में उससे कोई बात भी नहीं करता। अतः वह निश्चय कर वापस लौट जाता है कि अब वह कभी वापस नहीं आयेगा। 'वापसी' कहानी में भी गजाधरबाबू यही फैसला करके हमेशा के लिए घर छोडकर चले जाते हैं। यहाँ 'अर्थ' मानव-सम्बन्धों पर भारी पड़ता है।

आज पिता का पुत्र से जुड़ाव एक आर्थिक विवशता है। आर्थिक सहारे के लिए पुत्र आज माता-पिता को आश्रय देता भी है तो सिर्फ कर्तव्य निभाने के लिये, अगर बेटा कमाता है और पिता घर पर रहते हैं तो पिता सोचते हैं कि यह तो उसका कर्तव्य है। पिता-पुत्र सम्बन्धों का निर्वाह अब मात्र शिष्टाचार रह गया है। अगर परिवार में पुत्री कमाती है और पूरे घर का बोझ ढोती है तो युवा पुत्री की अपनी इच्छाएँ, आकाक्षाएँ और अपना जीवन जीने की तमन्ना बलि चढ़ जाती है। इन्हीं स्थितियों से जुड़ी मन्नू भंडारी की कहानी 'क्षय' में दिखलाया गया है कि

परिवार में कमानेवाली पुत्री की स्थिति में आज भले ही परिवर्तन आया हो, घर के उत्तरदायित्व का बोझ ढोती हो, परन्तु कहीं-कहीं कमाने वाली पुत्री की स्थिति यदि पहले जैसी दयनीय नहीं है तो उसे स्वतन्त्रता भी नहीं है। 'क्षय' की नायिका का पिता क्षय रोग से पीड़ित है। कुंती ने पूरे घर की आर्थिक जिम्मेदारी उठा ली है, मगर वो खुद एकाकी जीवन व्यतीत करती है। यहाँ तक कि वह स्वयं क्षयग्रस्त हो जाती है।

आज युवा पीढ़ी बदल गई है। उनकी मानसिकता बदल गई है। "स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों का निर्णय एक ओर सामाजिक, नैतिक मान्यताएँ रह गई हैं, तो दूसरी ओर आर्थिक विवशता भी। इन दो पाटों के बीच पिसते हुए उनके सम्बन्धों में बनने-बिगडने की स्थिति भले ही न आए किन्तु उनमें दरारें अवश्य पड़ गई हैं, जिसके कारण पुरूष की पूरी सहानुभूति न पाकर भी नारी इन सम्बन्धों की लाश ढोए जाने के लिए मजबूर है। पुरूष से पूर्ण सहानुभूति या प्यार न पाकर भी उसे सन्तोष करना पड़ता है।"[7]

मोहन राकेश की कहानी 'उसकी रोटी' कहानी में ड्राईवर सुच्चासिंह सप्ताह में एक दिन घर आता है। उसे घर से कोई विशेष लगाव नहीं है। फिर भी उसकी पत्नी बालो को उस पर पूरा विश्वास है। वह रोज उसके लिए रोटी लेकर आती है, उसका इन्तजार करती है। बालो ने यह भी सुन रखा है, कि उसके पति ने शहर में एक रखैल रखी है। फिर भी परिवार के टूटने की आशंका से वह कुछ

नहीं करती। घर की परेशानियों को भी वह स्वयं सहन करती है, पति को नहीं बताती। उसे डर है कि कहीं घर की परेशानियों को बताने से वह नाराज न हो जाये और घर आना ही न छोड़ दे। इसी कारण वह हमेशा मानसिक पीड़ा में जीती है। वह सोचती है - "सुच्चासिंह पहले से घर के झंझटों से घबराता है, उसे और झंझट में डालना ठीक नहीं। अच्छा हुआ जो इस वक्त सुच्चासिंहने बात नहीं सुनी। वह तो अभी कह रहा था कि मंगलवार को घर नहीं आएगा। अगर वह सचमुच न आया, तो? और अगर उसने गुस्से होकर घर आना बिलकुल छोड दिया तो?"[8]

बालो आर्थिक निर्भरता के कारण ही सुच्चासिंह की ज्यादतियों को सहन कर लेती है। उसे डर है कि कहीं गुस्से में आकर वह उसे छोड न दे जिससे उसे टुकड़े-टुकडे के लिए तरसना पड़े।

आर्थिक रूप से निर्भर स्त्री को जब पति छोड़कर अन्यत्र चला जाता है और अपना अलग घर बसा लेता है तो परिवार की स्थिति बिगड जाती है। आर्थिक तनाव के कारण परिवार तो टूटता ही है साथ ही बच्चों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। कई तरह की अतिरिक्त परेशानियाँ भी पैदा हो जाती हैं।

'सुहागिनें' कहानी में काशी का पति अयोध्या उसे छोडकर पठानकोट चला गया है, जहाँ उसने अपना अलग घर बसा लिया है। काशी के सामने अपने बच्चों

के पालन-पोषण की समस्या है। अयोध्या कभी साल दो-साल में गाँव आता है तो अपनी पत्नी या बच्चों से मिलने नहीं परंतु अपनी जमीन के पैसे वसूल करने के लिये। और बदले में अपनी निशानी गर्भ में बच्चे के रूप में दे कर चला जाता है। काशी गर्भ में पल रहे बच्चे के बारे में चिन्तित है कि कहीं वह भी अभावों में पैदा हुए पिछले बच्चों की तरह सूखाग्रस्त न हो।

काशी कहती है - 'एक अभागा भूखे पेट से जन्मा था, वह सूखे से पड़ा है। अब दूसरा भी उसी तरह आएगा तो उसे जाने क्या रोग लगेगा?"[9]

आज आर्थिक कारणों से पारिवारिक जीवन की समस्याओं के विविध पहलू हैं। कमरतोड महँगाई, अकाल, भुखमरी, बेरोजगारी और आर्थिक कठिनाईयों के इस युग में आज मध्यम एवं निम्न वर्ग का व्यक्ति अपने जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं को ही पूर्ण कर पाने में असमर्थ है। इन्हीं कारणोंवश उसका अपने परिवार, पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन आदि के साथ संबंध टूटता जा रहा है, क्योंकि आर्थिक विपन्नता के कारण वह बडा परेशान रहता है।

व्यक्ति का परिवार अर्थ की असमानता के कारण प्रभावित हुआ है। अतः उसके आचार-विचारों का भी इस टूटन से प्रभावित होना स्वाभाविक है। जब व्यक्ति को सुख के स्थान पर मानसिक घुटन, संघर्ष, विषाद, कुंठा आदि मनोविकारों का सामना करना पड़ता है तो चाहे वह स्त्री हो या पुरूष, अपना धैर्य खोने लगता

है। मन्नू भंडारी की कहानी 'घुटन' की मोना से पूरे परिवार का खर्चा चलता है। अगर मोना ब्याह कर लेगी तो उसके भाई-बहनों को कौन पालेगा? यही नहीं, बूढ़ी माँ की तीस दिन में उनतीस दिन रहनेवाली बीमारी का खर्चा कहाँ से आयेगा? इसलिये पूरे परिवार की आर्थिक धरोहर के समान मोना को अपनी जिन्दगी जीने का कोई हक नहीं है।

गुजराती कहानीकार धीरूबेन पटेल की कहानी 'दिकरीनुं धन' की शकुंतला भी पढ़ी-लिखी और नौकरीपेशा युवती है। आर्थिकता के कारण माँ-बाप को उसकी शादी की कोई फिकर नहीं क्योंकि जब तक उसका भाई जयंत डाक्टर नहीं बन जाता, तब तक उसकी शादी करने के लिये तैयार नहीं है। शकुंतला खुद इतना कमाने के बाद भी आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं, क्योंकि माँ महिने के सारे पैसे लेकर केवल चार रूपये उसे खर्च करने के लिये देती है जिसमें वह एकाध ब्लाउज़ का कपडा, एकाध सिनेमा या पेन में खर्च कर डालती है। सभी चीजों की शौकीन होने के बावजूद वह न कभी अच्छी साड़ियाँ पहन पाती थी और न ही मौज-शौक पूरे कर पाती थी। परिवार में सिर्फ उसका उपयोग हो रहा है ऐसा उसे महसूस होता है और अर्थोपार्जन करने के बाद भी वह आर्थिक दृष्टि से परेशानियाँ उठाती है और अपनी मनोकामना, इच्छाओं को दबाती हुई सारे परिवार का बोझ ढोती रहती है।

आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण आज कई नारी पात्रों को अविवाहित

रहना पड़ता है। अर्थोपार्जन तो आज की पढ़ी-लिखी नारियाँ कर लेती हैं, परंतु परिवार से समाज से मानो बिलकुल ही कट जाती हैं।

आज खुली आर्थिक प्रतियोगिता के युग में स्त्री भी अर्थ प्राप्ति का स्रोत बन रही है और इस स्थिति में पुरूष और स्त्री दोनों के आपसी कार्य बदल रहे हैं, तो इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं है। ऐसी स्थिति में परिवार का चित्र बदल जाता है। वैसे सारे मानवीय सम्बन्धों की नींव आर्थिक स्रोत ही है।

नारी नौकरी करके अपने पैरों पर खड़ी रहती है और आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर बन जाती है। श्रीकान्त वर्मा की 'ट्यूमर' कहानी के पति को इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है। वह कमाने की दृष्टि से लाचार और असमर्थ है इस कारण उसके वैवाहिक सम्बन्धों में अन्तर आया है। पत्नी प्रभा कमाती है। उसके लिए प्रभा पत्नी नहीं बल्कि अभिभावक है। प्रभा का घर में इतना वर्चस्व है कि वह बहुत कुछ सोचकर भी कुछ नहीं कर सकता। प्रभा की दया से उसे घृणा होती है, कई बार सोचता है कि प्रभा से कहे कि वह उसके साथ रहना नहीं चाहता, पर उसे डर है कि प्रभा उसे अनुमति दे दे तो वह कहाँ जायेगा? प्रभा को सहना ही उसकी नियति है। जबकि मानसिक स्तर पर वह प्रभा से इतना दूर हो गया है कि किसी भी स्तर पर वह उसे अपनी नहीं लगती। वह परिवार में रहता तो है मगर परिवार से जुड़ता नहीं। प्रभा के स्वतंत्र व्यक्तित्व को वह सह नहीं सकता। परन्तु अपनी लाचारी, विवशता और परावलंबिता के कारण उसके मन में गाँठ (ट्यूमर)

है जो उसे निरंतर चुभती रहती है उसको सहते चले जाना उसकी नियति है।"[11]

आर्थिक दबावों ने आज भाई को भाई न रहने दिया, पुत्र-पिता में दरारें पैदा कर दीं, बेटी माँ से दूर जा गिरी। पति-पत्नी के रिश्ते में दरार पड़ गई, जीवन में कोई उदात्त मूल्य शेष नहीं रहा। 'घुन खाये रिश्ते' में अपर्णा टैगोर ने आर्थिक विपन्नता से जूझती मानव-प्रतिमा को अपना लक्ष्य बिन्दु बनाया है। यहाँ आर्थिक मजबूरियों में जीते परिवार के पुत्र रमापति की मानसिकता का सफल चित्रण हुआ है।"[11]

आर्थिक संकट ने माता-पिता तथा सन्तान के पारस्परिक सम्बन्धों के सन्तुलन को नया रूप दिया है। आर्थिक अभावग्रस्तता ने शिष्टाचार और नफासत को भी बुरी तरह सोख लिया है। कहानी का रमापति अपनी माँ के गर्भवती हो जाने पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहता है "न जाने इन बूढ़ों को कब अकल आयेगी। इतनी उम्र हो गई, पर प्रोडक्शन अभी तक चालू है।"[12] आर्थिक स्थितियों से जूझते हुए रमापति तीन साल से विवाहित होते हुए भी सन्तान पैदा नहीं करता। पिता पुरानी पीढी के व्यक्ति हैं। वह परिवार को नियोजन की दृष्टि से नही सोच पाते, पर लडका इन स्थितियों के प्रति सतर्क है , और किसी भी तरह के अतिरिक्त आर्थिक बोझ से बचना चाहता है और परिवार से अलग हो जाता है। आज आर्थिक तनाव ने परिवार जैसे मजबूत ढाँचे को मानो हिलाकर रख दिया है। निरूपमा सेवती की कहानी 'टुच्चा' आर्थिक मोर्चे पर लडती नारी की कहानी है।

बाप-बेटे, भाई-बहन आदि रिश्ते भी आर्थिक धरातल पर आँके गये हैं। कहानी की नायिका अपने पिता के देहान्त के बाद, सारे परिवार का आर्थिक बोझ वहन करने का एक उपकरण मात्र बनकर रह गयी है। घर तथा ऑफिस में सभी मुसीबतों का सामना करती है, लगता है जैसे उसका अपना कोई व्यक्तित्व ही नहीं। घर के लोगों के लिए वह दाल-रोटी जुटाने वाली मशीन है। 'के' के लिए शारीरिक भूख मिटाने का साधन और बॉस के लिए मानसिक तृप्ति का एक माध्यम। लेकिन स्वयं के लिए वह अस्तित्वहीन है। पेट की भूख और जिस्म की भूख के बीच पिसती नारी सब की जरूरतें पूरी करती है। पर अपने लिए कुछ नहीं कर पाती। वह अविवाहित रहती है। बॉस तथा अन्य लोगों के पास जाकर पैसा कमाती है। भाई-बहन को पढ़ाती है। एक बार इस तनाव से राहत पाने के लिए वह गोलियाँ खा लेती है। उसकी स्थिति काफी गंभीर हो जाती है। उस वक्त उसके पास बैठी बहन भाई से कहती है 'दीदी की पासबुक वगैरह कहाँ रहती है, यह भी कुछ मालूम है? अब कुछ हो गया तो?"[13]

जिस बहन ने अपने भाई-बहनों के लिए सब कुछ किया। उसी बहन के बारे में केवल पैसे की भाषा में बात करते हैं जैसे बहन कुछ नहीं। पासबुक ही सबकुछ है। आज यदि कहीं सबसे ज्यादा बिखराव आया है तो पारिवारिक सम्बन्धों में। आज सम्बन्ध भावनात्मक नहीं रहे। त्याग एवं आदर्श की जगह ये सम्बन्ध ठोस आर्थिक धरातल पर आ टिके हैं।

कुछ कहानियों में आर्थिक विषमताओं का सटीक वर्णन हुआ है। दर असल पूँजीवादी व्यवस्था में अमीर और गरीब के बीच की खाई इतनी गहरी हो गई है कि उसे बाँटना अब सरल काम नहीं है। एक तरफ गरीब अभावग्रस्त लोग हैं, जिनके लिए त्यौहार मनाना भी एक मजबूरी ही है। दूसरी ओर अमीर लोग हैं, जिनके लिए रोज ही दिवाली रहती है। से. रा. यात्री की कहानी 'अँधेरे का सैलाब' में दो परिवारों की आर्थिक स्थितियों का तुलनात्मक चित्रण किया गया है।

कहानी में "एक परिवार इंजीनीयर का है, दिवाली के अवसर पर उसे अनगिनत भेंटें प्राप्त होती हैं। मिठाई के अम्बार लग जाते हैं। और दूसरी ओर एक गरीब बुद्धिजीवी व्यक्ति का परिवार है, जिसमें एक किलो सस्ती मिठाई का डिब्बा खरीद कर बच्चों से छिपा कर रख दिया जाता है और बच्चे उसे खाने के इंतजार में भूखे ही सो जाते हैं। यहाँ परिवार की तनावजन्य स्थिति को प्रस्तुत किया है।"[14]

प्रभु जोशी की कहानी 'यह सब अन्तहीन' भी सम्बन्धों के विघटन और आर्थिक तृष्णा के एक घृणित रूप को चित्रित करती है। कहानी का नायक सतू अपनी बेकारी की स्थिति में इतना टूट जाता है कि अपनी बहन को पड़ौस के गुण्डों की हवस का शिकार होते देखकर भी वह उत्तेजित नहीं होता। इससे उसे एक सन्तोष ही मिलता है। वह इस सारी घटना को आर्थिक लाभ के चश्मे से देखता है और अपने आप को यह कहकर तसल्ली दे देता है - "और लोग भी तो

नगरों में अपनी बहनों के लिए ग्राहक तलाश कर लाते हैं। बहन की अस्मत तो जा रही है यदि उस अस्मत के सहारे दोनों की रोजी-रोटी चल जाये तो क्या बुरा है ?"[15] आज सम्बन्ध सिर्फ पैसों के लिये चल रहा है। एक ओर नारी स्वातंत्र्य का नारा लगाया जाता है तो दूसरी ओर मजबूरियों में भी लाभ लेने की वृत्ति नहीं जाती।

मालती जोशी की कहानी 'मध्यान्तर' में मध्यमवर्गीय नारी विमल पंडित की मजबूरियों की कहानी है। आज की नारी का क्षेत्र केवल घर के भीतर का नहीं बाहर का भी है। आर्थिक मजबूरियों के कारण विमल विवाह पूर्व और विवाह के बाद भी नौकरी करती है। आज केवल विमल की ही मजबूरी नहीं है। ऐसी कई नारियाँ दुकानों-दफतरों में नौकरी करती हैं। विमल के कन्धों पर घर गृहस्थी का बोझ है, जिसे ढोते हुए वह घर और दफतर दोनों ही जगह अपमान का घूँट पीती है। उसकी एक लडकी है। उसका पति 'अगला बच्चा अभी नहीं, दो के बाद कभी नहीं' इस नारे का झूठा समर्थन करता है। जबकि बहन के यहाँ चार लड़कियों के बाद लड़का होने पर वह खुशी मनाता है। लेकिन विमल कहती है - "लोगों के यहाँ चार-चार पैदा होते चले जाते हैं। और यहाँ...."[16]

पति-पत्नी में इस प्रकार के प्रश्नों को लेकर हर रोज झगड़ा होता है। 'हम इतने गुजरे हैं कि दो बच्चे भी नहीं पाल सकते। जिन्दगी भर दूसरों की ही गृहस्थी का बोझ ढोते रहना होगा।"[17]

उसके जीवन का सारा उत्साह मिट गया है। पति पर गुस्से से चीख-चीखकर कहती है 'औरत कहलाने को कुछ बाकी भी रहने दिया है तुमने। सब तो निचोड़ लिया है। पैसे कमाने की मशीन रह गई हूँ मैं। इसलिए तो मेरा रोना कम्पना सबकी आँखों में आता है। मशीन हूँ न, रोने का हक थोड़े ही है मुझे।"[18] सारा परिवार इसी तनाव के साथ जीता है। परिवार के लोगों में विवशता की तीक्ष्णता को मुखर किया गया है। जहाँ व्यक्ति अपनी संवेदनाओं और आशाओं-आकांक्षाओं को कुचलकर जीने को विवश होता है।

आज अर्थ जीवन-मूल्य बनकर उभरा है। व्यक्ति का मूल्यांकन और महत्व अर्थ के आधार पर आँका जाने लगा है। यहाँ तक कि आर्थिक संकट ने परिवारगत सम्बन्धों में भी परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। पति-पत्नी, माता-पुत्र, पिता-पुत्री, भाई-बहन आदि के परस्पर सम्बन्धों में परिवर्तन लाने के लिए किसी हद तक आर्थिक-संकट भी उत्तरदायी है, जिसमें इन सम्बन्धों के स्वामित्व के परम्परागत मूल्यों को खण्डित कर दिया है।

राजेन्द्र यादव की कहानी 'टूटना' भी एक प्रकार से आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न पति-पत्नी के तनाव की कहानी है। इस कहानी में पत्नी चूँकि आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत सम्पन्न परिवार की है, अतः वह कम आय वाले पति के साथ निर्वाह नहीं कर पाती और कुछ ही दिनों में उनके सम्बन्ध इतने असहनीय हो जाते हैं कि उनको अलग हो जाना पडता है। बाद मे जब पति आर्थिक दृष्टि से उच्च पद को प्राप्त कर लेता है, तब पत्नी उसके पास लौटने को प्रस्तुत है और इससे सिद्ध

होता है कि पति-पत्नी के सफल सम्बन्धों के लिए आर्थिक समानता एवं स्थिरता एक आवश्यक शर्त है।"[19]

आज व्यक्ति हर दृष्टि से असहाय है और उसकी असहाय अवस्था का कारण अर्थ-संकट है। आर्थिक सुदृढ़ता व्यक्ति तो हतोत्साहित नहीं होने देती।

दूधनाथसिंह ने अपनी कहानी 'स्वर्गवासी' में इसी स्थिति का समाज-मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। यह कहानी पिता-पुत्र के रिश्तों के बेबाक चित्रण के कारण ही एक बहुचर्चित कहानी रही है। सम्बन्ध यदि आधारित हैं तो 'अर्थ' की धरती के ऊपर ही, परन्तु जब धरती ही नहीं है तो सम्बन्धों की इमारत खडी कहाँ हो? आदर्श, परम्पराएँ, मूल्य और आर्ष-ग्रन्थों में कहे वाक्य सबकी अर्थवत्ता 'अर्थ' के न होने पर खो जाती है।

प्रस्तुत कहानी का नायक बेकार है। वह नौकरी की तलाश में है, परन्तु उसे नौकरी कहीं मिलती नहीं है। वह अब क्या करे? उसका इसमें क्या अपराध है कि वह बीमार पड़ जाता है और उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है। 'रूकना मत', पिता ने जोर देकर कहा था, जो उसे बुरा भी लगा था। बहू की हालत खराब है। उसका सातवाँ आनेवाला था। पिता के बुढापे और असहायता पर उसे चिढ़ सी होती है। उसके पिता कह रहे थे कि विपत्ति तो राजाओं के ऊपर भी आती है, परन्तु नायक सोचता है कि पेट की विपत्ति को आदर्शो से कैसे भरा

जाये? वह अपने पुत्रों के विषय में सोचता है। और पुत्र अपने पिता के मरने पर... वह हरे बाँसों की टिक्की बनवायेगा, कितनी जल्दी करनी पड़ेगी, कौन-कौन कन्धा देगा। उसे लग्गी देनी पड़ेगी, बारह दिन तक लगातार जमीन पर सोना पडेगा, खोपरे में रहना पड़ेगा। लगभग सौ लोग होंगे। यह सब सोचते हुए वह चिन्तित हो जाता है। चिंता अथवा दुःख पिता के मरने का नहीं है, अपनी बेकारी का है।"[20]

आर्थिक अभाव सम्बन्धों को समाप्त कर देते हैं। नायक के लिए पिता का जीवित रहना यदि एक मुसीबत है. तो मरने पर भी उसे छुटकारा नहीं है। पिता के 'स्वर्गवासी' होने पर कितना व्यय करना होगा, समस्त कोमल, मधुर संवेदनाएँ 'अर्थ' के भीषण दबाव से मर जाती हैं। सम्बन्ध कहाँ से कहाँ बदल कर पहुँच जाते हैं। पुत्र पिता के मरने की कामना करता है।

महानगरीय परिवेश में 'अर्थ' के दबाव ने पुत्र को पिता के प्रति भावनात्मक सम्बन्धों से परे, पारस्परिक मूल्यों से विलग कर दिया है। हिन्दू परिवार में पुत्र का पिता के प्रति आजीवन कर्तव्य-निर्वाह एक दायित्व है। आज के युग में आर्थिक प्रश्न बडा जटिल हो गया है। पुत्र की परिवार में प्रतिष्ठा उसकी आर्थिक स्थिति से ही होती है। जब परिवार में पुत्र इस भूमिका को नहीं निभा पाता तब वह घर से चला जाता है।

अशोक अग्रवाल की कहानी 'कोई एक घर' का नायक एक शिक्षित और

बेकार पुत्र है, जो परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ है। पिता के प्रति उसके मन में तीव्र आक्रोश है। उसका पिता आत्म-केन्द्रित, उत्तरदायित्वहीन एक आवारागर्द व्यक्ति है, जिसे अपने परिवार की तनिक भी परवाह नहीं है। खराब लतें उसमें भरी पडी हैं। जुआ, मटका, लॉटरी, शतरंज में उसका पिता सदा व्यस्त रहता है।

परिवार का भार इस बेकार पुत्र के माथे पर ही है। पिता-पुत्र एक दूसरे को बरदाश्त नहीं कर पा रहे। आमने-सामने आने पर उठ खडे होते हैं और पुत्र पिता के प्रति ग्लानि अनुभव करता है। कभी उसे भय होता है कि वासुदेवचाचा की तरह वो भी आत्महत्या न कर ले। अंत में उसे लगता है कि वह एक पल भी यहाँ रूक नहीं सकता। पिता से पुत्र विघटित हो जाता है।"[21] इस प्रकार पिता-पुत्र में अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

पुत्र ऐसे उत्तरदायित्वहीन पिता के प्रति कोई लगाव नहीं रखता। पिता का कर्तव्य पुत्र को योग्य बनाना होता है। उसका भरण-पोषण करना होता है।

उपर्युक्त विधान से जुड़ी कहानी 'प्रियकान्त परीख' का चैतन्य प्रसाद और उनकी पत्नी म्युनिसिपैलिटी के अलग-अलग स्कूलों में प्राथमिक शिक्षक हैं। सादगी के साथ जीनेवाले पति-पत्नी अपने तीनों पुत्रों के लिये एक की मासिक आय जमा करके बचत करते थे। आर्थिक परिस्थिति न होने पर भी बडे बेटे अमृत को डॉक्टर बनाया, तो दूसरे को इंजीनियर और तीसरे को बैंक में नौकरी

दिलाई। कमाने पर पिता और माँ को छोड़कर पुत्र अब अपनी पत्नियों के साथ स्वतंत्र रहने लगे, अमृत की पत्नी के चले जाने के बाद अन्य दोनों बहुओं ने भी अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया और उन्होंने भी चैतन्य प्रसाद और समताबहेन को छोड़कर अलग-अलग अपना आशियाना बना लिया। अब उनको अपने बूढे माँ-बाप की कोई फिकर नहीं है। पुत्रों के चले जाने पर माँ का दिल टूट जाता है।

चैतन्य प्रसाद उनको दिलासा देते हुए कहते हैं - 'त्रण-त्रण पुत्रोए आपणे निःसंतान? आयखुं पड़ी गयुं आपणुं.... हुं माँ छुं ने? अेमना छोकरा अेमने छोड़ीने जता रहेशे त्यारे वात्सल्य विच्छेदनी वेदना अेमने समजाशे त्यारे मोडुं थई गयुं हशे।"[22]

चैतन्य प्रसाद समताबहेन को हमेशा पुत्रों की खबर न देने के कारण पर परदा डालते रहे और इस चिंता में समताबहेन ने अपने प्राण त्याग दिये। समता बहेन की मृत्यु के बाद रिटायर्ड चैतन्य प्रसाद अकेले रहने लगे। उन्हें लगता था कि कोई न कोई जरूर अपने साथ रहने के लिये ले जायेगा। परन्तु अफसोस कोई नहीं आया। अब तबियत अच्छी न रहने के कारण मित्र की सलाह पर वृद्धाश्रम पहुँच गये। वहाँ जब अपनी अंतिम साँसें गिन रहे थे तब तीनों पुत्र पुराने मकान का हिस्सा लेने के लिये आ खड़े हुए। किसी ने चैतन्य प्रसाद की तबियत को नहीं पूछा पैतृक सम्पत्ति होने के कारण मकान को समान हिस्सों में बॉट दिया

गया, यही देखकर चैतन्य प्रसाद ने अपने अंतिम संस्कार का हक अपने बेटों के हाथ से छीन लिया और अपने सहवासी किसी दोस्त को यह हक दे दिया।

पुत्रों को लगता है कि बच्चों का भरण-पोषण करना, उनको पढाना, नौकरी दिलाना यह तो सब माँ-बाप का कर्तव्य होता है। मगर पुत्र अपने उत्तरदायित्वों को भूल जाता है। आज सारे पुराने रिवाज बदल गये हैं। पिता की पीढ़ी अपने दायित्वों की पूर्ति, युवा-पीढ़ी द्वारा चाहती है। मगर उसके अपने भी दायित्व हैं, यदि 'पितृऋण' को चुकाने में ही पुत्र अपना जीवन समाप्त कर देगा तो वह स्वयं के लिए क्या कर पाएगा।

पिता-पुत्र में तनाव का कारण आज अर्थोपार्जन के साथ-साथ यह भी है कि युवा पीढ़ी परम्परा, संस्कृति और खानदान के नाम पर पुरानी पीढ़ी का समर्थन करने को तैयार नहीं है। वह अपनी मेहनत की कमाई को किसी के साथ बाँटने के लिए तैयार नहीं।

आज सम्बन्धों में बदलाव की यह प्रक्रिया साठ के बाद परिवार के अन्य जनों के माध्यम से देखी जा सकती है। आज सम्बन्धों का यह बदलाव बड़ी तेजी के साथ उभरा है। बहन-भाई, भाई-भाई, बाबा-पोते, पोतियाँ, सास-बहू, ससुर-दामाद, चाचा-भतीजे के सम्बन्धों में भी बदलाव आ गया है, इनके पीछे कहीं न कहीं 'अर्थ' ही मूलभूत कारण रहा है।

आज पिता-पुत्र के सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं तो भाई-भाई के सम्बन्ध में भी आर्थिक कारणों से बँटवारे ने परिवार को विघटित कर दिया है।

मिथिलेश्वर की कहानी 'दूसरा महाभारत' में भाई-भाई के बड़े ही प्रिय और भावुक सम्बन्ध किस प्रकार जमीन और खेत के बँटवारे मं टूट जाते हैं, इसे दर्शाया गया है। भाई भाई का शत्रु बन जाता है। एक पिता है जिनके चार पुत्र हैं। और उन्हें अपने पुत्रों पर गर्व है। उनको बड़ी प्रसन्नता थी कि वह चार बेटों के पिता हैं। क्योंकि उनके कोई भाई नहीं था, वह अकेले थे। पिता ने एक योजना बनाई थी - दो बड़े बेटे पढ़ लिख कर नौकरी करेंगे और दो बेटे खेती करेंगे। बडे भाई शहर के कॉलेज में पढ़ते थे। राजकुमारों सा जीवन व्यतीत करते हैं। बड़े भाई गाँव आते, तब अपने हिस्से का अनाज ले जाते। पिता की मृत्यु के बाद खेती से अपना हिस्सा दोनों भाईयों ने माँगा। इस पर तीसरे भाई ने कहा कि तुम्हारी नौकरियों से हमारा भी हिस्सा बनता है। इस पर तकरार बढ़ती है और लड़ाई शुरू हो जाती है और घटना स्थल पर लड़ाई के कारण उनकी लांशें गिर जाती हैं।

भाई-भाई के परस्पर संबंधों का भारतीय संस्कृति में लक्ष्मण और भरत से उदाहरण दिया जाता है। भाई-भाई के सम्बन्धों के वे आदर्श माने जाते हैं, परन्तु आझ के इन अर्थकेन्द्रित सम्बन्धों में परस्पर त्याग और प्रेम का स्थान गौण है,

धन ही सबकुछ है। आज एक भाई अपने हक के लिये दूसरे भाई का गला घोंटने को भी तैयार है।

पारिवारिक सम्बन्धों में आज़ हर रिश्ते मे दरार पड़ गई है, अगर अर्थ को लेकर लड़ाई है तो कभी भी एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं।

भाई-भाई के सम्बन्धों के बाद परिवार में भाई-बहन के सम्बन्धों को भी महत्व दिया गया है।

बहन का वाचक शब्द 'स्वसर' है। मैक्समूलर ने इसका अर्थ 'अच्छा रहने वाली' माना है। उनका विचार है कि बहिन संभवतः परिवार की कुशलता का ध्यान रखने वाली थी। चास्काचार्य ने इसका अर्थ 'अत्यधिक निर्भर' या 'अपने लोगों पर निर्भर रहने वाली' किया है। 'ज्ञामि' शब्द का प्रयोग बहिन के लिए भी किया गया है। बहन के लिए 'भगिनी' शब्द का प्रयोग हुआ है।"[23]

भाई और बहिन एक ही माता-पिता की सन्तान होते हैं। परन्तु बहिन की अपेक्षा भाई का परिवार में महत्व अधिक होता है, क्योंकि भाई अपनी बहिन की रक्षा करता है।

बहनें भाईयों से अधिक प्रेम करती हैं, अपेक्षाकृत भाईयों के। परन्तु प्यार

का यह रूप समाप्त हो गया है, क्योंकि युद्ध, महँगाई, आर्थिक दबाव से विवश होकर लड़कियों को नौकरी करनी पड़ती है। नौकरी ने लड़कियों को स्वावलम्बी बनाया है. वे माता-पिता और छोटे भाई-बहिनों की जब पालक बनीं, तो परिवार में उसका स्थान बदल गया। बेकार भाई की तुलना में कमाऊ बहिन का महत्व बढ़ गया।"[24]

ऐसी ही कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में उषा प्रियंवदाजी ने पारिवारिक जीवन में भाई-बहन के सम्बन्ध को प्रस्तुत किया है। भाई सुबोध बेकार है, बहिन वृन्दा की आय पर सुबोध आश्रित है। दोनों के मध्य माँ की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। वे जैसे-तैसे दोनों को सन्तुष्ट रखने का प्रयास करती है। परिवार में व्यक्ति के अस्तित्व और उसकी स्थिति में पैसा कितना अन्तर ला सकता है, इसे इस कहानी में बड़े ही यथार्थ रूप में दिखलाया गया है। आज आर्थिकता के कारण सम्बन्धों मे तनाव उत्पन्न हो गया है।

सुबोध जब नौकरी करने लगा तब माँ-बहिन उसे प्यार करती थीं। शोभा उसकी प्रेमिका है, जिससे उसकी सगाई भी हो जाती है। परन्तु नौकरी छूटते ही माँ और बहिन से अप्रत्यक्ष रीति से किया जाने वाला अपमान, सगाई का टूट जाना, सम्बन्धों को पूर्ववत् नहीं रहने देता है। पेट भरने के लिए भाई को बहन पर आश्रित रहना पडता है। जिसके बदले में उसे उपेक्षा, प्रताड़ना और घृणा मिलती है। उसकी जिन्दगी में गुलाब नहीं, अब केवल काँटे ही रह गये हैं। वह जीवन में

असफल रहा है।

"वृन्दा जब नौकरी नहीं करती थी तो भाई के कमरे को गुलाब के फूलों से सजाती थी। भाई की दिनचर्या के अनुसार ही घर के काम होते थे। सुबोध की नौकरी छूटने पर उसके कमरे का सामान वृन्दा के कमरे की शोभा बढाने लगा। वृन्दा की सुख-सुविधा पर अब अधिक ध्यान रखा जाता था। सब्जी-भाजी लाना, वृन्दा की सहेलियों को छोड़ने जाना, आदि-आदि काम अब उसके ऊपर आ गये थे। अपने अफसर द्वारा किया गया अपमान न सह करने के कारण ही तो उसने नौकरी छोड़ी थी। अब बहन द्वारा किया जाने वाला अपमान वह सहता रहता है।

भाई-बहिन के प्रेम संबंध अब 'अर्थ' के धरातल पर टिके हैं। परिवार एक जरूर है, मगर भाई परिवार में होते हुए भी 'अर्थ' के कारणवश मानसिक तनाव से अपनी जिन्दगी बसर कर रहा है।

साठोत्तरी युग में माता-पिता तथा संतान के सम्बन्धों में बदलाव में सर्व प्रमुख मुखर स्वर आज की कहानी में 'अर्थ' का बढ़ता प्रभाव परिलक्षित होता है। आज समाज और परिवार व्यवस्था 'अर्थशासित' है। अतः अर्थ के दबाव के कारण आज परिवार के हर सम्बन्धों में बदलाव आ गया। 'अर्थ' का अभाव या दबाव माता-पिता, संतानों के पारस्परिक प्रेम की गर्माहट को कडवाहट में बदल देते हैं। सन्तान को आज की महँगाई में और भौतिकवादी संस्कृति वाले समाज में तथाकथित सम्मानित जीवन जीने के लिए धन चाहिए। आज के वृद्ध माता-पिता

अपने खून-पसीने की कमाई सन्तानों को देकर स्वयं खाली हाथ नहीं हो जाना चाहते हैं। वृद्धावस्था में कौन उसका सहारा होगा, जब संतान अपना जीवन जी रही होगी। अगर माता-पिता संतान को समाज में सुव्यवस्थित नहीं रख सकते तो जन्म देने के लिए माता-पिता को दोषी ठहराया जाता है। यही असुविधायुक्त जीवन देना था तो हमें जन्म देने की क्या आवश्यकता थी। आज सन्तान के लिए माता-पिता का अर्थ है - सुविधायुक्त जीवन जीने का साधन। अगर वह सुविधायुक्त जीवन नहीं दे सके तो संतान भी उन्हें अपना प्रेम और सेवायें नहीं दे सकते। प्राचीन ग्रंथोंके यह वचन कि माता-पिता हर अवस्था में पूजनीय हैं, संतान के लिये आज प्रायः अर्थहीन हो गये हैं। आज वे पितृऋण को मानने के लिये भी तैयार नहीं हैं।

सन्तान माता-पिता के आर्थिक बोझ को उठाना अपना दायित्व नहीं मानती हैं। विवाह के उपरांत स्वयं उनका अपना परिवार बन जाता है। तब पिता उन्हें अपने जीवन का खलनायक लगने लगता है। नौकरी के लिए पुत्र को घर से बाहर जाना पड़ता है, माता-पिता उसके साथ रहना नहीं चाहते क्योंकि पुत्र के परिवार में पुत्रवधू और पौत्र-पौत्रियों के साथ रहने में वे असुविधा महसूस करते हैं। माता-पिता और सन्तान के अतिरिक्त भाईःभाई का वैमनस्य, भाई-बहिन के सम्बन्धों की टूटन का कारण भी आर्थिक ही है।

अस्तित्ववादी चिन्तन के कारण जहाँ माता-पिता अपने अस्तित्व के विषय

में व्यग्र रहते हैं, वहाँ सन्तान अपने अस्तित्व की सार्थकता के लिए चिंतित रहती है, अस्तित्व के महत्व का टकराव ही सम्बन्धों को बदल देता है। माता-पिता ने अपना जीवन जिया है, तो संतान भी अपना जीवन जीना चाहती है। संतान के अस्तित्व को माता-पिता द्वारा परिवार में स्वीकार न किए जाने के कारण ही उनमें कुंठा, अजनबीपन और एकाकीपन जाग्रत होता है, जिससे सम्बन्ध निरंतर ठंडे पड़ते चले जाते हैं। आज की युवा पीढ़ी अपने अस्तित्व के प्रति अधिक जागरुक हो गई है।

माता-पिता के वृद्ध हो जाने पर संतान का व्यवहार अवचेतन मन में दबी इन्हीं ग्रंथियों से परिचालित रहता है। शराबी, क्रूर और अनैतिक पिता का कठोर व्यवहार सन्तान और माता-पिता के संबंधों में फासला उत्पन्न कर देता है जो संतान के युवा हो जाने पर भी सम्बन्धों की टूटन का कारण बना रहता है।

इसी बदलते युग में 'अर्थ' के दबाव ने नारी को घर से बाहर निकल कर कार्य करने को विवश किया। घर से बाहर निकलने पर उसके सम्बन्ध माँ-पुत्री, पत्नी अथवा बहिन के रूप में कुछ और ही हो गये।

पराजित पटेल लिखित कोलम 'रण ने तरसे गुलाबनी' में लिखी कहानी उपर्युक्त कथन को साकार करती है। नायिका वावणी एक बहुत ही सुंदर औरत है, अप्सरा से भी ज्यादा रूप उसको भगवान ने दिया है। दूसरी ओर एक युवक

जिज्ञासु झवेरी के साथ उसका विवाह हुआ है। नायक के दो ही सपने थे एक खूबसूरत पत्नी और अपार सम्पत्ति। विवाह के बाद जिज्ञासु विशाल विश्व का आकाश अपनी मुट्ठी में समाना चाहता था। विश्व की विशाल खूबियों को अपने पॉकेट की डिजीटल डायरी में कैद कर देना चाहता था, परन्तु पत्नी सुख को सलामत रख कर।

अति सुंदर पत्नी की जुबान से निकले शब्द का वह अति उमंग के साथ पालन करता था। जिज्ञासु झवेरी ने कहा - "वेलकम माय लाइफ पार्टनर, वावणी! इस नाचीझ बंदे के दिल पर राज करो।

-मैं जो कहूँगी करोगे? - तुम कहकर तो देखो।

- यहाँ तुम्हारे बूढ़े माँ-बाप हैं, भाई-भाभी हैं। मेरा मन यहाँ उलझता है। क्या हम अलग नहीं रह सकते?

आदाब, गुलाम हाजिर है।"[25]

दुनिया को अपनी मुट्ठी में हासिल करने के लिए जिज्ञासु एक दिन अपनी पत्नी वावणी से कहता है - "अपना स्वप्न साकार करने के लिये मुझे अमरिका जाना पडेगा, तुम अकेली रहकर क्या करोगी। अगर चाहो तो तुम अपना पोस्ट ग्रेज्युएट डॉक्टर होने का सपना पूरा कर सकती हो। यह बात वावणी को भी पसंद आयी। वह अमरिका से पैसे तो भेजता रहा था दूसरी ओर अद्वितीय सौंदर्यवती वावणी ने तीन संतानों के पिता प्रो. ओझा के साथ अनैतिक संबंध स्थापित करके जिज्ञासु से संबंध

विच्छेद कर दिया।

अर्थोपार्जन के लिए आज के युग में प्रतिभाशाली युवक बाहर के देशों में चले जाते हैं। अपने रिश्तेदारों को छोड़कर आने के बाद पता चलता है कि अब कोई रिश्ता बचा ही नहीं।

गुजराती की कहानी लेखिकाओं में आज पराजित पटेल की परिवार से जुडी कहानियाँ हर सामयिक, दैनिक और मासिक पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। इन कहानियों के द्वारा उसमें समाज का असली आईना दिखाया गया है।

भोगवाद और धनलिप्सा ने आजीवन साथी पति-पत्नी के सम्बन्धों तक को झुठला दिया है। 'अर्थ' को समस्त सम्बन्धों का केन्द्रबिन्दु मान लिया गया है। पति-पत्नी के सम्बन्धों के टूटने तक का एक प्रमुख कारण 'अर्थ' ही हो गया है। विवाहोपरांत पति-पत्नी आजीवन साथ रहते हैं, परंतु आज के युग में आर्थिक दबाव ने पति-पत्नी को विवश कर दिया है कि वे अपनी-अपनी नौकरियाँ करते हुए अलग-अलग स्थानों पर रहें। कई बार ऐसी स्थितियाँ भी आती हैं जहाँ अलग-अलग रहकर पति-पत्नी पैसा तो कमाते हैं, भौतिक सुख-सुविधाएँ जुटाते हैं और जैसे-तैसे वे अपने दायित्व का निर्वाह भी करते हैं किन्तु उनकी मानसिक शांति नष्ट हो जाती है। घर में नौकर-चाकर, मान-मर्यादा, दौलत-शौहरत होते हुए भी पति की वजह से पत्नी को तनाव महसूस होता है या पत्नी की वजह से

पति को, या परिवार के किसी सदस्य की वजह से तनाव होता ही है।

कुसुम अंचल की कहानी 'आज क़ा दिन' में एक डॉक्टर की पत्नी की वेदना को प्रस्तुत किया गया है। रीना विवाह के १८ साल बाद भी चाहती है कि उसकी 'वेडिंग एनिवर्सरी' उसी तरह मनायी जाये जैसे पहले मनायी जाती थी। बन ठनकर कहीं जाना, बाहर ही डिनर लेना, उपहार देना, उसे बड़ा अच्छा लगता था। किन्तु शेखर इस वायदे को भूल गया है। कोई न कोई बहाना या मरीज़ उसे रीना से दूर ले गया है। घर बदल गया, बच्चे व्यस्त हो गये। हीरे-माणिक से उसकी उँगलियाँ दमक उठीं परन्तु भरते हुए घर में उसका अपना मन तनाव से गुजर रहा है। चाँदी के पॉट में काली चाय की तरह वह इस घर में एक काँट्रास्ट बनकर रह गयी। शेखर मशीन-सा बन गया। शेखर के पश्चिमी जीवन में उसका जीवन धीरे-धीरे मिटता गया और जीवन रस सूखता गया। फिर भी वह शिकायत न कर सकी। उसे लगता है जैसे वह शेखर के इस पुराने घर की दीवार पर एक लटका हुआ जीवन्त चित्र बन गयी। वह सोचती है "शायद अब मुझे उम्र के हिसाब से मैच्योर हो जाना चाहिए, क्योंकि अवश्य ही प्यार-दुलार शादी के एकाध साल तक चलने वाले चोंचले हैं, जो बहुत नहीं चलते। कुछ साल बाद पत्नी घर की एक रसोई मात्र रह जाती है, जहाँ नित नई खाने की डिसीस के साथ पकना पड़ता है।"[26]

कामकाजी विशेषतः डॉक्टर की पत्नी के हिस्से में उसका पति बहुत कम

आता है। इसलिये मान, मर्यादा, नौकर-चाकर रहकर भी वह उन सबसे दूर चली जाती है। 'अर्थ' के कारण उसके पास उसका और शेखर का जीवन जैसे मशीन बन गया है। शेखर को नाश्ते और भोजन के समय ही उसकी याद आती है। मानो अपनी पत्नी नहीं कोई रसोई हो। अर्थ के कारण पति-पत्नी और पारिवारिक सम्बन्ध आज के युग में सिमटकर रह गये हैं। साठोत्तरी युग में हर सम्बन्ध सिर्फ अर्थतंत्र पर निर्मित रह गया है। कमलेश्वर की प्रसिद्ध कहानी 'बयान' की नायिका का दाम्पत्य अर्थ की वजह से छिन्नभिन्न हो जाता है। कहानी के नायक फोटोग्राफर ने सरकारी तंत्र की सही तस्वीर रेगिस्तान को रेगिस्तान बताकर ही जब पेश की, तब उसे नौकरी से हटा दिया जाता है। उसके बाद बेकारी की मजबूरियों के कारण विज्ञापन की कम्पनी में काम स्वीकार करने के बाद जब वह बाजार के लायक काम करने के लिए अपने समस्त मूल्य और आदर्श की बलि दे देता है, तो पत्नी के अन्तर्वस्त्र उतरवाकर झीनी साड़ी पहना विभिन्न कोणों से उसके उत्तेजक फोटो लेता है। "मुझे तरह-तरह से बिठाया और लिटाया था और तस्वीरें ली थीं। उस वक्त उनकी एक आँख पहले की तरह काँप रही थी। ... तब भी आठ-दस बार आँखों से खून के कतरे टपके थे। उन्होंने मुझे बुरी तरह थका दिया था।"[27] बेबसी की इंतहा के कारण उसकी आँख में खून उतर आया था। पत्नी गृहस्थी चलाने हेतु जिस स्कूल में काम करती थी, वहाँ किसी ने यह तस्वीरें पहुँचायी। मॉडलिंग करने वाली औरत को भारत देश की संस्कृति के रखवाले स्कूल में कैसे रखते? टेलीलेंस खरीदने के लिए फोटोग्राफर ने अपनी पत्नी को मॉडल बनने को मजबूर किया था और समाज ने उसे नौकरी से हटा दिया। दोनों बेकार थे। बदनामी

अलग थी। कोई नौकरी नहीं दे रहा था। मंजबूर पति अपनी ही पत्नी के नंगे-अधनंगे फोटो बेचने के लिए मजबूर हो गया। आर्थिक स्थिति को जानकर पत्नी ने भी उसका विरोध नहीं किया। यही आज के युग की तासीर है।

आर्थिक विवशताओं द्वारा उत्पन्न दाम्पत्य सम्बन्धों के तनाव, उन सम्बन्धों का तड़कना एवं आर्थिक मजबूरियों में मनुष्य की निरूपायता का बहेतरीन चित्रण कमलेश्वर की प्रसिद्ध कहानी 'राजा निरबंसिया' में हुआ है।

एक लाचार मजबूर पति की वेदना को जगपति के माध्यम से साकार किया है। बचनसिंह कम्पाउन्डर से दवाइयों के लिए लिये गये कर्ज का जहर उसे धीरे-धीरे मार देता है। कम्पाउण्डर ने उसकी जाँघ तो ठीक कर दी परन्तु उसे लंगड़ी जिंदगी जीने को मजबूर कर दिया। उसके संसार की हर खुशी छीन ली। खाट पर पडे बीमार जगपति और लकडी की टाल का कारोबार चलाने वाले जगपति को, धीरे-धीरे अपनी पत्नी चन्दा को बचनसिंह के अधिकार में जाते देखकर जो मानसिक तनाव झेलना पड़ता है, उसका बड़ा ही यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कहानी में किया गया है। जगपति के दुःख, दर्द, अन्तःसंघर्ष, बेबसी, लाचारी आरम्भ से अंत तक रिसते हुए घाव के समान है। उसका वर्णन कमलेश्वर ने बडी मार्मिकता से किया है।

जगपति ब्याह करके बिना ब्याहे जैसे बिना बहू के वापस आ गया था। उस

समय के दुःख का अन्दाज तो वही जानता है, जिस पर ऐसा बीता हो। गोली लगना और बिना कोई खास दवादारू के अस्पताल का दर्द तो वह सह गया किन्तु अपनी आँखों के सामने बचनसिंह का उसकी जवान पत्नी की चूडियों से भरी कलाईयाँ और पैरों को देखने का दर्द वह नहीं सह सकता था। किन्तु वह मजबूर था। अपने सिरहाने कई ताकत की दवाईयों को रखा देख और चन्दा के लिए खाट का इन्तजाम देखकर तो वह और भी बेचैन हो गया। कडा बेचनेवाली बात पर उसे विश्वास तो नहीं आया था किन्तु मजबूरी से वह कुछ कह नहीं पाया।

बचनासिंह कम्पाउण्डर के दवाखाने से लौटी चन्दा के मुख पर असंमजस, पीडा, निरीहता आदि के अगणित भाव आ-जा रहे थे। उसे देखना जगपति को अच्छा नहीं लगता किन्तु वह मना भी नहीं कर सकता था। गाँव लौटने पर लोगों का 'राजा निरबंसिया' कहकर उसका मजाक उड़ाना, उसे नश्तर की भाँति चुभ जाता है। किंतु अपनी नपुंसकता के कारण वह किसी से लड नहीं सकता। महिनों बाद काम-भावना से वह चन्दा के मुख पर जब झुकता है तब उसके चेहरे से दूध की महक का आभास पाकर उसकी भावना मर जाती है। सबसे बड़ा धक्का उसे तब लगता है जब उसे चन्दा के सिरहाने उसके कड़े मिलते हैं। उस समय उसका गला बुरी तरह सूख गया था। जबान जैसे तालू से चिपक गई थी। उसने चाहा कि - "चन्दा को झकझोर कर उठाए, रक्त पानी बन गया था।"[28] उसने चाहा कि कड़े को लेकर हंगामा खड़ा करे। किन्तु - "कड़े माँगकर वह चन्दा से पत्नीत्व का पद भी छीन लेगा। मातृत्व तो भगवान ने छीन ही लिया।"[29] वह सोचता- "आखिर

चन्दा क्या रह जाएगी? ... एक नारी से यदि पत्नीत्व और मातृत्व छीन लिया गया, तो उसके जीवन की सार्थकता ही क्या? चन्दा के साथ वह यह अन्याय कैसे करे?"[30] जगपति एक अच्छा इंसान है। अतः वह सारे जहर को पी गया।

बाद में वह इतना मजबूर हो गया कि जिस बचनासिंह से उसे नफरत थी उसी से वह कर्जा लेकर लकड़ी की टाल डालता है। उसने जब बचनासिंह को घर आने की खुली छूट दे रखी थी तो चन्दा को उससे मिलने से वह कैसे रोक सकता था। चन्दा की केवल आँखें बचनासिंह पर नहीं होती अपितु पूरे जीवन पर। जगपति को भूख इसलिए नहीं लगती, कारण घर जाने पर उन दोनों की आँखमिचौली वह देखना नहीं चाहता था। "कोई एक रग दुखती तो वह सहलाता भी, जब सभी नसें चटखती हों, तो कहाँ-कहाँ राहत का अकेला हाथ सहलाए?"[31]

छह साल होने पर जब जगपति को बच्चा नहीं हुआ तो अब होने का अर्थ कम्पाउण्डर से सम्बन्धों से जोड़ा जाने लगता है। कोई भी पति इस बात को कैसे बर्दाश्त कर सकता है। उस दिन न उसने लकड़ियाँ कटवाई, न बिक्री की। हिंसक पशु की भाँति वह घर लौटा, किन्तु गली में घुसते ही उसे लगा किसी ने उसे अदृश्य हाथों से पकड़कर सारा रक्त निचोड़ लिया है। उसकी मार पर चन्दा के कथन का कि "तुमने मुझे बेच दिया" का वह विरोध नहीं कर सकता, न उसे घर छोड़कर जाने से मना करता है। उसे लगता है - "क्या बचनसिंह ने टाल के लिए जो रूपये दिए थे, उसका ब्याज इधर चुकता हुआ।"[32] अदालत से बच्चा उसे मिल

सकता है - वाली बात जब मुंशीजी उसे बतलाते हैं तो वह सोचने लगता है - "अपना कहकर किस मुँह से माँगूं, बाबा? हर तरफ तो कर्ज से दबा हूँ, तन से, मन से, पैसे से, इज्जत से, किसके बल पर दुनिया सँजोने की कोशिश करूं?"[33]

इसलिए अन्त में इस रिसते घाव से छुटकारा पाने के लिए वह आत्महत्या करता है। उसने सच कहा था। "…. मैंने अफीम नहीं, रूपये खाए हैं। उन रूपयों में कर्ज का जहर है।"[34]

आर्थिक विवशताओं का दाम्पत्य सम्बन्धों का तनाव, सम्बन्धों का तड़कना एवं आर्थिक मजबूरियाँ मनुष्य को आत्महत्या करने पर मजबूर कर देते हैं।

'दुःखभरी दुनिया' कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएँ' में संग्रहित एक और सशक्त कहानी है, जिसमें उन्होंने मध्यमवर्गीय आशाओं-आकांक्षाओं के जिन्दगी के कटु यथार्थ से टकराकर टूटने के दर्द को अंकित किया है। 'दुनिया की मार से पिटा हुआ एक बाप और बाप की मार से काँपता हुए एक बेटा' निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की आशाओं की टूटन, घुटन एवं संघर्षरत जिंदगी को साक्षात करते हैं। अपने को बड़ा न बना सकने से खीझ और झुंझलाहट और अपने बेटे दीपू को बहुत बड़ा आदमी देखने की आकांक्षा में अपनी खूब धुनाई - ये सब चीजें कहानी के माध्यम से मध्यमवर्गीय जीवन की आर्थिक विडंबना और जीवन के सपनों को ढहने के चित्र अंकित करती है। बिहारी अच्छे जीवन में छलाँग लगाने की बात

इसलिए सोचता है कि उसकी पत्नी की फटी साड़ी की जगह नई साड़ी आ सके, जाड़े सिर पर आ जाने पर बच्चों की रजाई का अभाव दूर किया जा सके। मार खाकर नींद में भी अठारह छक्के एक सौ आठ, अठारह सते... गिनता अखबार के टुकड़े में लपेटकर रखा नाश्ता ले जाता और किरमिच के जूते पहनकर रंग के डिब्बे, कापी, पेंसिल के बिना स्कूल जाता दीपू माँ-बाप के लिए भविष्य है। किन्तु अभावों में जीता हुअ यह भविष्य इंजीनियर बन जाने वाले भविष्य के साथ मिलाकर नहीं चल सकता है। इसलिए दीपू को अच्छे नंबर न पाते देख बिहारी बाबू को लगता है कि उनकी दुःखभरी दुनिया कहीं ठहरकर रह गई है।"[35] इस प्रकार यह कहानी साधन संपन्न और साधनहीन जमातों की खाईयों को बड़ी खूबी से सामने लाती हुई निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक कारणोंवश संघर्षपूर्ण जिन्दगी को चित्रित करती है।

'तेजी से बढ रही इस विलगाव की प्रक्रिया में आदमी स्वयं से तादात्म्य स्थापित करने में अपने को असफल पा रहा है। यह असफलता निरंतर उसे धीरे-धीरे पलायनवाद की ओर ले गयी है। परिणामतः व्यक्ति का स्वयं से भी विश्वास उठ गया है। अविश्वसनीयता की इस स्थिति में आदमी एक दुहरे व्यक्तित्व के लिए असली चेहरे को छिपाकर नकली मुखौटा लगाये अपने को ही छल रहा है। इन तमाम विसंगतियों के बीच परिवार ढह रहे हैं, टूट रहे हैं और सहभावना निरवधिकाल के लिए निष्काषित हो गयी।"[36]

आर्थिक संकट में व्यक्ति बाहर-भीतर सभी के द्वारा छला जाता है। चुभती हुई मानवीय संवेदना की इस स्थिति में जब अपने खून के रिश्तों तक को कोई नहीं पूछता, तो फिर अन्य सगे-सम्बन्धी की बात तो दूर है।

'दूसरे' कमलेश्वर के कहानी संग्रह 'माँस का दरिया' की कहानी है, जिसमें मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक विषमता और टुकड़ों में नौकरी करती एक लड़की सुनीता की बेबसी का चित्रण है। इस परिवार की आर्थिक मजबूरी ऐसी है कि "इसके सदस्य पूरी तरह दूसरों पर निर्भर हैं, इसके सारे निर्णय 'दूसरे' ही करते हैं।"[37] घर की आवश्यता की छोटी-छोटी चीजें आएँ या न आएँ - इसका निर्णय उनके हाथ में नहीं है अपितु उन्हें कर्ज देने वाले के हाथ में है। बिलकुल व्यक्तिगत समस्याएँ कि उसकी माँ के और बच्चे हों या न हों, परिवार के सदस्य किसे वोट दें - ये सभी निर्णय दूसरे ही उनके लिए लेते हैं। इस घर के पात्रों को अपनी जिन्दगी जीने की सुविधा कभी मिलती ही नहीं। कहानी के पात्रों की पीडा का चरमबिंदु यह है कि सुनीता का विवाह भी परिवार के किसी सदस्य की मरजी से नहीं होता, अपितु उसे दूसरे ही तय करते हैं।

आर्थिक कारणोंवश सुनीता उन सब निर्णयों को अपनाने के लिए मजबूर है। कमलेश्वर ने अपनी कहानी को सामान्य व्यक्ति की संघर्षो से भरी जिंदगी का साक्षात्कार किया है।"[38] उसकी आर्थिक मजबूरियाँ और निरूपायता को चित्रित कर लेखक ने सामान्य आदमी की पीड़ा को बाँटना चाहा है। कमलेश्वर की

कहानियों में 'परिवेश में व्याप्त यातना और संताप का तनाव है। यह तनाव मात्र वैयक्तिक नहीं है, बल्कि समकालीन जीवन की टूटन और विसंगति की भयावह क्षुब्धता का प्रतिफल है, कहानी की यंत्रणा आत्मिक होते हुए भी सामायिक से पृथक नहीं है।"[39]

'आसक्ति' कहानी भी 'मेरी प्रिय कहानियाँ' में संकलित है। इस कहानी के पात्र दो भाई-बहन हैं। भाई बेरोजगार है और उसकी विवशता एक और प्रकार की है। खिड़की में प्रेमी-प्रेमिका की तरह दोनों का प्रोफाइल बनकर खडा होना और स्वयं को फिल्म का हीरो-हीरोइन समझना और सुजाता के माथे पर भाई का प्यार करना आदि समस्त वर्णन थोड़ी देर के लिए पाठक को चक्कर में डाले रखते हैं कि यह भाई-बहन का कैसा रिश्ता है। कहानी के इस पक्ष से अधिक अच्छा वर्णन सुजाता की पुरूषों के बीच में रहकर नौकरी करने की समस्या का हुआ है। भाई-बहन दोनों का बेगानापन और अधिक तीव्रता से कहानी में अंतर्भूत हो सकता था। लगभग यही कहानी उषा प्रियंवदा की कहानी 'जिंदगी और गुलाब के फूल' के सुबोध के माध्यम से चित्रित की गई है जिसमें बेकारी को ढोते नवयुवक की आंतरिक पीड़ा और पारिवारिक संबंधों के बीच आती आर्थिक मजबूरियों की विवशता का अहसास कराने का प्रयास किया गया है।

उषाजी की यह कहानी एक कमाऊ बहन और एक बेकार भाई के बदलते रिश्तों की कहानी है। अपने अफसर की अपमानजनक बात सुनकर सुबोध ने अपने

आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए इस्तीफा दिया। उसकी बहन वृन्दा कई साल घिसट-घिसट कर मास्टरनी बन गयी और फिर तो सुबोध की एक-एक चीज उसके कमरे से वृन्दा के कमरे में जाने लगी। पहले मेज ली गयी। वैसे वृन्दा का कोई लिखना-पढ़ना तो खास नहीं था किन्तु जूड़े के काँटे, नेल-पॉलिश की शीशी और गर्द-भरी किताबें उस पर पड़ी रहती थीं। एक दिन माँ ने कहा - "वृन्दा को रोज स्कूल में जाने में देर हो जाती है। अपनी अलार्म घड़ी दे दो सुबोध।"[40]

'नयी घड़ी वह क्यों नहीं खरीद सकती?' का जवाब माँ ने ऐसा दिया कि उसे अपनी नौकरी खोने का अहसास फिर हो गया। उसे लगा कि जैसे वृन्दा ही पहले से घर चला रही है। वह तो बेकार और निठल्ला बैठा है। जब वह नौकरी करता था तब यही वृन्दा उसके आगे-पीछे घूमा करती थी, उसके सारे काम दौड-दौड़ कर किया करती थी।

पहले ऐसा नहीं होता था। वृन्दा और माँ दोनों उसके कार्यो का इन्तजार करती रहती थीं। सुबोध की दिनचर्या के अनुसार घर के काम होते थे। वृन्दा हमेशा बाद में खाती थी, क्योंकि तब वह नौकरी नहीं करती थी और न सुबोध बेकार था। आज सुबोध बेकार है इसलिए उसका परिवार माँ और वृन्दा से अलग हो गया है। पुरूष होने के नाते घर में जो सत्ता होती है, उसे अर्थ द्वारा तोडने की कोशिश उषाजी ने की है।

पुरूष सत्ता को धनार्जन करने वाली नारी के व्यवहारों से छोटे-छोटे अवसरों पर तोडने की कोशिश की है। आर्थिक स्वतंत्रता के कारण ही भाई-बहन के साथ नौकरों-सा व्यवहार करती है और बेटा माँ-बहन से तनाव महसूस करता है, अर्थ की वजह से।

आज हर रिश्ता चाहे माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी कोई भी हो, अर्थ के ऊपर ही टिका हुआ है। अगर अर्थ की वजह से कुछ परेशानी हुई तो भाई-भाई के बीच भी तनाव बढ़ जाता है। से. रा. यात्री की कहानी 'गौरव' भाई-भाई के सम्बन्ध आर्थिक दृष्टि से कितने कटु हो गये हैं, इसे दर्शाती है, जिसमे एक भाई अपने भाई अविनाश के गिरफ़्तार होने की खबर खुशी की खबर के रूप में सुनता है - "फ्रंट पेज की न्यूज़ है। अविनाश वाज अरेस्टेड : उसकी दो लाख की जमानत हुई। ....द टाइम्स ऑफ इंडिया ने पूरा रिपोर्टिंग किया है।"[41] अविनाश मालिक का छोटा भाई है, जिसने दिल्ली के पास की हजारों एकड़ जमीन झूठ-मूठ एक्वायर करके लोगों को किश्तों पर प्लॉट्स बनाकर बेच दी। कुछ दिनों में ही उसने दो करोड़ का बिजनेस किया है। "उसका भाई हजारों गरीब लोगों की खून-पसीने की कमाई धोखाधड़ी करके हड़प रहा था और वह इस बात को जरा भी बूरी नहीं समझता था।"[42]

बेरोजगारी भी पारिवारिक विघटन का एक कारण है। पति की बेरोजगारी में परिवार को अत्यधिक आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जिससे

पारिवारिक सदस्यों में तनाव बना रहता है। एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है - "बेकारी या अर्ध-बेकारी निम्न मध्यमवर्गीय समाज को खोखला बना रही है। इससे आर्थिक स्थिति बिगड़ती ही जाती है। बेकारी से ही यह वर्ग अधिक अशान्त है। इसी के कारण उसके जीवन में अस्थिरता तथा असन्तोष उत्पन्न होते हैं।"[43]

बेरोजगार व्यक्ति को अपना अधिकांश समय घर पर ही गुजारना पडता है, सो उसके लिए बहुत मुश्किल है। परिवार में बच्चों और पत्नी का व्यवहार भी उसके प्रति उपेक्षा का रहता है और ऐसी स्थिति में व्यक्ति स्वयं को बिलकुल असहाय महसूस करता है। बेरोजगार व्यक्ति अत्यन्त निराश होता है, जिसे स्वयं पर भी गुस्सा आने लगता है। ऐसे में लोगों से सम्बन्ध बनाए रखना तो और भी मुश्किल होता है। मोहन राकेश कृत कहानी 'ज़ख्म' में नायक अपनी बेकारी की अवस्था में जब आर्थिक तनाव झेलता है तो स्वयं को लोगों से दूर रखना चाहता है। वह अपने मित्रों से भी बहुत दूर होता जाता है। 'जब कभी लम्बी बेकारी के दौर से गुजरना पड़ता, और कई-कई दिन शराब छूने को न मिलती, तो वह भूलभूलैया में खोए आदमी की तरह करता - "मुझे समझ आ रहा है कि मैं बिलकुल कट गया हूँ... हर चीज से बहुत दूर हो गया हूँ।... मुझे यह भी एहसास हो रहा था कि तुम सब लोगों ने मुझे बीता हुआ मान लिया है ... बीता हुआ गुमशुदा।"[44]

मध्यमवर्गीय युवक साधारण कामों को करना पसंद नहीं करते और इच्छानुसार

नौकरी मिलती नहीं। फलस्वरूप उन्हें बेकारी का जीवन गुजारना पडता है। परिवार में आर्थिक तनाव के कारण जब उनकी बेकारी को लेकर चर्चा होती है तो वे परिवार से दूर भागने की कोशिश करते हैं।

मोहन राकेशजी की 'आर्द्रा' कहानी में बचन का छोटा लड़का बिन्नी बेकार है। अभावों के कारण ही बम्बई की गन्दी बस्ती में बीस रूपये महीने पर किराये के मकान में उन्हें रहना पड़ता है। वह नौकरी की तलाश में बहुत व्यस्त रहता है। कई-कई दिन तक घर नहीं आता। यहाँ तक कि अपनी माँ से भी उसके सम्बन्ध मात्र औपचारिक ही रह गये हैं। घर न आने पर बचन बहुत चिन्तित रहती है - "और बिन्नी आता, तो अपने में ही उलझा हुआ व्यस्त-सा। उसे कमाने का सवाल था, वह महिने में मुश्किल से साठ-सत्तर रूपये घर लाता था। .. वह जानती थी कि ये रूपये भी वह ट्यूशन-ऊशन करके ले आता है, वरना सही माने में वह बेकार ही है।"[45]

"मध्यमवर्गीय परिवारों में बेकार युवक आर्थिक रूप से परजीवी होने के कारण हीनभाव के शिकार हो जाते हैं। अभिभावकों द्वारा उपेक्षित होने के कारण वे निराश और कुण्ठित हो जाते हैं, जिससे उनमें व्यवस्था और अभिभावकों के प्रति विरोध तथा विद्रोह जाग्रत हो जाता है।"[46]

आज आर्थिक समस्या हर परिवार के विघटन और तनाव का कारण बन

गई है। वर्तमान समय में आर्थिक तनाव को दूर करने के लिए स्त्रियाँ भी नौकरी करने लगी हैं। नौकरी पेशा होने के कारण स्त्रियाँ घर पर समय कम दे पाती हैं। इससे घर में अव्यवस्था बढने लगती है। वे यह अपेक्षा रखती हैं कि पति तथा घर के अन्य सदस्य भी उनके काम में मदद करें। परिवार के सदस्यों द्वारा अपेक्षित व्यवहार न होने पर उनमें निराशा पनपने लगती है। फलतः मानसिक पीडा में जीती हैं, जिसका प्रभाव परिवार पर पडता है। परिवार में आर्थिक स्थिति के कारण उसे इस तनाव से गुजरना ही पड़ता है।

"समाज का बहुत बड़ा हिस्सा मध्यम वर्ग से है। एक और परम्परागत मूल्यों का निर्वाह और दूसरी ओर अंधानुकरण आदि के कारण मध्यमवर्ग आर्थिक विवंचना से घिरा होता है।"[47] यहाँ निरन्तर अर्थाभाव के कारण व्यक्ति की बढ़ती यातनाएँ और उसके कारण बदली हुई मानसिकता के अनेकानेक उदाहरण हमें मिलते हैं। इन कहानियों में कहीं-कहीं दो पीढिय़ों का संघर्ष, नयी पीढी के नये निर्णय हैं। कहीं लड़की के विवाह की समस्या है तो कहीं पोती की आवश्यकताओं की पूर्ति न होने का दुःख चित्रित है।

* हृदयेश की कहानी 'नये अभिमन्यू' दो पीढ़ियों के बीच के फासलों की अभिव्यक्ति है। पुरानी पीढ़ी की कायरता और नयी पीढी की विद्रोही प्रवृत्ति को उजागर करती है।

* शशिप्रभा शास्त्री की 'रीढ़' कहानी अर्थाभाव में भी जिजीविषा को बनाए रखकर 'रीढ़' बनकर परिवार को चलाने वाले गृहस्वामी का चित्रण करती है।

* सुनील कौशिक की कहानी 'बन्द दरवाजे' में मध्यमवर्ग की आर्थिक अभावों को झेलने की विवशता और उसके फलस्वरूप जन्मी घुटन का चित्रण है।

* अरूणा सीतेश की 'निर्णय' कहानी में मध्यवर्गीय परिवार की अनब्याही लड़की का आर्थिक कठिनाईयों से जूझने के साथ ही उसके मानसिक संघर्ष का चित्रण है जो उसे विजातीय लड़के के साथ शादी करने के लिए मजबूर करता है।

* स्वदेश दीपक की 'महामारी' कहानी में आर्थिक अभावों की स्थितियों के कारण परिवारजनों की बिखरी तनावजन्य विघटन स्थितियों का चित्रण है।

* शावम व्यास की 'ऋतुएँ' कहानी में आर्थिक वजह से व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यहाँ असुविधाओं के कारण व्यक्ति तनाव से गुजरता है।

* ममता कालिया द्वारा रचित 'उपलब्धि' कहानी में आर्थिक नुकसान से भी

पारिवारिक सुख तनावग्रस्त हो जाता है।

इन सभी कहानियों में व्यक्ति की आर्थिक विवंचना अलग-अलग संदर्भ में अभिव्यक्त हुई है, जिससे व्यक्ति टूटा हुआ महसूस करता है और तनाव से गुजरता है। आर्थिक पक्षों को लेकर लिखी गई कहानियों में बेकारी, सिफारिश, अनुशासनहीनता आदि समस्याओं का चित्रण हुआ है। इन्हीं समस्याओं में भीष्म साहनी, धर्मवीर भारती, महीपसिंह, मोहन राकेश, से. रा. यात्री, रेणु, कमलेश्वर, दीप्ति खंडेलवाल, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, जोसेफ मेकवान, रामजी कडिया, ईश्वर पेटलीकर, रघुवीर चौधरी, वर्षा अडालजा आदि कहानीकारों की कहानियों में मानव-जीवन के विभिन्न आर्थिक पक्षों और उनसे उत्पन्न विविध प्रकार की विषमताओं को अपने यथार्थ रूप में देखा जा सकता है।

****

सन्दर्भ सूचि

1. तोमर - गोयल- परिवार और समाज - पृ. 492
2. श्रृंखला की कड़ियाँ - पृ. 101 मोहन राकेश का साहित्य पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन की स्थितियाँ से उद्धृत।
3. कमलेश्वर - सारिका, अक्टुबर-1974 में प्रकाशित समान्तर संसार, पृ. 9
4. कमलेश्वर - कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ - पृ. 51
5. दीप्ति खण्डेलवाल - बेहया - पृ. 11
6. गुजरात समाचार - शतदल पूर्ति - पृ. 31 (19-7-2003 की आवृत्ति)
7. डॉ. शिवशंकर पाण्डेय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : कथा और शिल्प - पृ. 105
8. उसकी रोटी - मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 238
9. मोहन राकेश - सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 161
10. डॉ. साधना शाह - नई कहानी में आधुनिकता का बोध - पृ. 931
11. डॉ. रमेश देशमुख - आठवें दशक की हिन्दी कहानी और जीवन मूल्य - पृ. 114
12. अपर्णा टैगोर - घुन खाये रिश्ते (कहानी); जुलाई - पृ. 13
13. निरूपमा सेवती - खामोशी को पीते हुए - टुच्चा - पृ. 49
14. से. रा. यात्री - अंधेरे का सैलाब
15. प्रभु जोशी - यह सब अन्तहीन - सारिका
16. मालती जोशी - मध्यान्तर - पृ. 85
17. मालती जोशी - मध्यान्तर - पृ. 86
18. मालती जोशी - मध्यान्तर - पृ. 97
19. राजेन्द्र यादव - टूटना और अन्य कहानियाँ - पृ. 123
20. दूधनाथसिंह - स्वर्गवासी
21. अशोक अग्रवाल - कोई एक घर
22. प्रियकान्त परीख - कोलम रजनीगंधा - गुजरात समाचार बुधवार नी साप्ताहिक पूर्ति - पृ. 2, दि. 23-7-2003

23. समसामयिक हिन्दी कहानी में पारिवारिक सम्बन्धों के बदलाव - ज्ञानवती अरोडा - पृ. 156
24. उषा प्रियंवदा - जिन्दगी और गुलाब के फूल - पृ. 134
25. पराजित पटेल - रणने तरस गुलाबनी - गुजरात समाचार, बुधवारनी पूर्ति - पृ. 7, दि. 23-7-2003
26. कुसुम अँसल - आज का दिन - स्पीड ब्रेकर - पृ. 17
27. कमलेश्वर - बयान - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ. 75
28. कमलेश्वर - राजा निरबंसिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ. 23
29. कमलेश्वर - राजा निरबंसिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ. 23
30. कमलेश्वर - राजा निरबंसिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ. 23
31. कमलेश्वर - राजा निरबंसिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ. 23
32. कमलेश्वर - राजा निरबंसिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ. 33
33. कमलेश्वर - राजा निरबंसिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ. 36
34. कमलेश्वर - राजा निरबंसिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ. 36
35. कमलेश्वर - खोई हुई दिशाएँ - दुःखभरी दुनिया
36. राजेन्द्र यादव - एक दुनिया समानान्तर - पृ. 22
37. कमलेश्वर - माँस का दरिया - दुसरे (कहानी)
38. पुष्पपाल सिंह - कमलेश्वर कहानी का संदर्भ - पृ. 52
39. बयान तथा अन्य कहानियाँ - भूमिका - पृ. 12
40. उषा प्रियंवदा - जिन्दगी और गुलाब के फूल - पृ. 147
41. से. रा. यात्री - गौरव :काल विदूषक - पृ. 74
42. से. रा. यात्री - गौरव : काल विदूषक - पृ. 74
43. डॉ. हेमराज निर्मम - हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग - पृ. 176
44. जख्म-मोहन राकेश - सम्पूर्ण कहानियाँ - पृ. 415
45. मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ - आर्द्रा - पृ. 411
46. डॉ. मूलचन्द गौतम - हिन्दी नाटक की भूमिका - मध्यवर्ग के सन्दर्भ में - पृ. 184
47. डॉ. सौ. प्रतिभा धारासूरकर - आठवें दशक की हिन्दी कहानी - पृ. 78